International Journal of Advances in Engineering and Management (IJAEM)
Volume 2, Issue 10, pp: 296-298 www.ijaem.net ISSN: 2395-5252

" समाज में सभ्यता पर संकट का विश्लेषणात्मक अध्ययन"

Santosh Kumar Maurya
Assistent Prof. JRF/SRF Sociology
S.K.J.D P.G College Kanpur (D) U.P.

Date of Submission: 20-11-2020 Date of Acceptance: 10-12-2020

सारांशः– आज मानव के सामने की ऐसी सभ्यता का संकट खड़ा हो गया है कि पूरा मानव का अस्तित्व ही संकट में दिखाई दे रहा है। इसका परिणाम क्या होगा यह तो वक्त ही बताएगा। हमारे समक्ष सभ्यता का संकट है। सारी दुनिया कहीं न कहीं इस संकट को अनुभव भी कर रही है। इस संकट से चिंतित भी है। समाधान क्या है? इस पर भी सारी दुनिया में गंभीरता से विचार हो रहा है।
मुख्य शब्दः– समाज, सभ्यता, संकट, समस्या, चुनौति।

बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में मनुष्य का विचार कमजोर हो रहा है, मानो मनुष्य जाति का दिमाग छोटा हो रहा है। परिस्थितियों को समझने और सुलझाने के लिए प्रचलित विचार और सारे शास्त्र बिलकुल नाकाफी साबित हो रहे हैं। 21वीं सदी शुरू होने से पहले इस समस्या का हम बयान कर देना चाहते हैं, ताकि मनुष्य की विचार शक्ति को पुनः जागरित करने के लिए हर दिशा से प्रयास हो। इसमें कोई शक नहीं है कि अध्ययन, मनन–चिंतन आदि के काम पहले से ज्यादा मात्रा में हो रहे हैं। ग्रंथों की रचना और शास्त्रीय अनुसंधान पहले से कई गुना अधिक है कहा जाता है कि चिंतन–मनन में सहायता जुटाने के काम में आधुनिक टेक्नोलॉजी एक जबरदस्त भूमिका अदा कर रही है। इस दावे के बारे में हम आशवस्त नहीं हैं, क्या इसके परिणाम स्वरुप मनुष्य अपनी परिस्थितियों का मुकाबला करने में अपने को ज्यादा सशक्त अनुभव कर रहा है।

विचार कोई कूड़ा नहीं है कि उसका ढेर बनता जाए और न ही प्रदर्शनी का कोई माल है कि हम उसके बारे में कहे कि इतना लंबा मोटा या विस्मयकारी है। विचार ऐसी भी वस्तु नहीं कि श्रीमंत लोग उसको बड़ी मात्रा में खरीदकर मौज मस्ती करें। विचार की उत्पत्ति तब हुई जब प्रजाति के तौर पर मनुष्य को लगा कि वह चुनौतियों से घिरा हुआ है जिन्हे समझे और सुलझाएं बगैर उसका चल पाना संभव नहीं है। जब कई चीजों की समझ पक्की हो जाती है तो वह शास्त्र बन जाती है, बहुत सारी बातें विवाद और अनुसंधान की प्रक्रिया में रहती है। शेष जो रहस्य और अंधकार की तरह जान पड़ता है, उसको भी कल्पना और मिथको के द्वारा वैचारिक सांचे के अंतर्गत रखा जाता है इन तीन परतों के परस्पर संबंध से मानवीय विचार का एक संसार बनता है। हर मनुष्य या मनुष्य समुदाय का एक विचार संसार होता है।

इस विचार–संसार को हटा दे तो मनुष्य का ही अस्तित्व नहीं रहेगा। इस विचार संसार में रहकर मनुष्य को विश्वास रहता है कि वह टिका रहेगा। बुरी परिस्थितियों से उबर पाएगा और एक बेहतर भविष्य बनाएगा। यह विचार संसार इन दिनों बिल्कुल सूना हो गया है जिन सफलताओं को प्राप्त करने के लिए मनुष्य युगो से प्रयासरत था, जिन सफलताओं को हम 20वीं सदी के प्रथम में आसन्न समझते थे, वे अब बहुत दूर और प्राय असंभव दिखने लगी है।

एक प्रजाति के तौर पर मानव की सफलता क्या होती सकती है इसको दो हिस्सों में कहा जा सकता है। पहला, ब्र्हांड से मनुष्य का एक ऐसा संपर्क स्थापित हो कि संपूर्ण सृष्टि में उसको अपनी हिस्सेदारी का अनुभव हो, यह सर्वोच्च लक्ष्य है। दूसरा, और निम्नतम लक्ष्य होगा कि प्रत्येक मनुष्य को स्वाभिमान के साथ एक स्वस्थ जीवन जीने की पर्याप्त सुविधाएं प्राप्त हो जहां निम्नतम और सर्वोच्च दोनों लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कोशिशें होती रहती है, वहां सभ्यता होती है।

आज तक के इतिहास को हम धिक्कार सकते हैं कि अभी तक उपयुक्त न्यूनतम लक्ष्य को भी मानव समाज ने प्राप्त नहीं किया है और 21वीं सदी के प्राक्काल में हम आते हैं कि निम्नतम लक्ष्य और सर्वोत्तम लक्ष्य दोनों स्तरो पर विचार की कमी हो गई है। आज लगता है कि किसी भी मानवीय समस्या के हल के लिए मनुष्य के पास बुद्धि नहीं है पचास साल पहले स्थिति बेहतर थी मनुष्य के विचार संसार में बहुत सारे सकारात्मक तत्व थे, जिनके चलते लगता था कि मनुष्य अपने निम्नतम लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा गरीबी, बीमारी और अपराध से मुक्त एक विश्वव्यापी समाज व्यवस्था की संभावना तत्कालीन विचार संसार में दिखाई पड़ती थी। गरीबी, बीमारी और अपराध की व्यापकता के कारण सामाजिक मनुष्य का सबसे बड़ा काम जीवित और सुरक्षित रहना हो जाता है, केवल जीवित रहने के लिए जीवन संग्राम करते रहना एक निकृस्ट स्थिति है। धनी वर्ग या धनी देश का होने से इस स्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ता है, कारण आज के जैसे विषमतापूर्व विश्व समाज में एक हिस्से का जीवन–संग्राम पेट भरने के लिए होता है तो दूसरे हिस्से का जीवन–संग्राम पेटू बने रहने के लिए होता है। इस निकृष्ट स्थिति से मनुष्य जाति को ऊपर उठाने के काम में इस वक्त के सारे शास्त्र अपनी असमर्थता जाहीर कर रहे है।

अगर विश्वविद्यालय सामाजिक कार्य, राजनीति या मीडिया के क्षेत्र से एक औसत बुद्धिमान व्यक्ति से निम्नलिखित सवाल पूछे जाएं–

95 फीसदी मनुष्यों को सुख शांति देने वाले एक मनुष्य समाज की कल्पना क्या आगामी 50 या 100 साल के अरसे में आप कर सकते हैं क्या इस दिशा में कोई विश्वसनीय खाका है जिसको आप जानते हैं?

20–30 साल बाद की जनसंख्या को पर्याप्त भोजन देने के लिए कोई योजना अगर अमल में नहीं,तो सोच–समझ के स्तर पर ही सही, कहीं चर्चा में है क्या ?

इन दिनो जो शास्त्र या विचारधाराएं प्रचलित हैं उनके आधार पर बेरोजगारी, गृहहीनता, सामूहिक बीमारी, अशिक्षा, गांव की बदहाली आदि को अगले कुछ दशकों में मिटाना संभव लगता है क्या?

क्या पिछले 10 साल में आपने कोई ऐसी किताब पढ़ी है जिससे यह जानकारी मिलती हो कि विभिन्न देशों में लोकतंत्र के सामने काफी चुनौतियां है, कथा लोकतंत्र को अधिक सार्थक और कारगर बनाने के लिए कौन से काम करने होंगे?

इस वक्त के सामाजिक शास्त्र या यंत्र विज्ञानों की ओर से ऐसा कोई योगदान होने जा रहा है जिसके बल पर भारत अफ्रीका का एक साधारण नागरिक आश्वस्त उसके लिए समय आ गया है?

जब विश्व की सभी प्रकार के समाजों की ओर गौर किया जाता है तो पता चलता है कि विभिन्न समाज, विकास के विभिन्न स्तरों पर हैं, आज यदि विश्व के कुछ समाज शिकार एवं भोजन संचयन की स्थिति में है तो दूसरी तरफ पश्चात देश विकास की चरम सीमा पर है। इन देशों के बीच कुछ समाज पशुपालन स्तर में हैं तो कुछ समाज उन्नति कृषि स्तर में हैं, उन्हीं तत्वों से प्रभावित होकर 19वीं सदी के कुछ समाजशास्त्रीय और

International Journal of Advances in Engineering and Management (IJAEM)
Volume 2, Issue 10, pp: 296-298 www.ijaem.net ISSN: 2395-5252

मानवशास्त्रीय विचार व्यक्त किया कि समाज में परिवर्तन उद्विकाशीय प्रणाली के तहत होता है। समाज के विकास के विभिन्न स्तर होते हैं। उसे दूसरे से अलग करने के लिए लोगों ने विभेदीयकरण की अवधारणा का या उन लोगों का मानना है कि प्रारंभिक स्तर में समाज काफी सरल और उसमें कम से कम विभेदीयकरण पाया जाता था, पर जैसे–जैसे समाज सरलता से जटिलता की ओर बढ़ा वैसे–वैसे विभेदीकरण भी जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में बढ़ता गया। सामाजिक विचारको का यह विचार संभवतः जीव वैज्ञानिकों के विचारों से प्रभावित था। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि उद्विकासीय स्तर पर अमीबा एक सबसे सरल प्राणी है और एक विकसित जानवर संरचना की दृष्टि से सबसे अधिक जटिल प्राणी है।

मानव ने आज इतना विकास कर लिया है कि विकास ही विनाश का कारण बनता जा रहा है। आज इंसान ने पृथ्वी के साथ–साथ अन्य ग्रहों की खोज और अपनी पहुंच वहां तक पहुंचा दिया है और तमाम ऐसे उपकरण वैज्ञानिकों ने खोज लिया है कि चाँद, मंगल तक हमारी पहुंच हो गई है। साथ ही साथ दूसरे ग्रहों की दूरी और गति का भी आसानी से पता किया जा सकता है। व्यक्ति के किसी अंग का प्रत्यार्पण करना हो या फिर सुधार करना हो तमाम ऐसे वैज्ञानिक उपकरण के साथ–साथ तकनीकी ने लोगों के जीवन को बदल कर रख दिया है। बदलाव की इस यात्रा में मानव ने बहुत तेजी से प्रकृति से दूरी अपनाई है कहने का तात्पर्य प्रकृति का अत्यंत दोहन किया है, दोहन की यह सीमा अपने चरम अवस्था पर पहुंच गई है। अब परंपरागत हथियारों का प्रयोग न करके दूसरे ऐसे हथियारों का विकास किया जा रहा है जो किसी एक व्यक्ति नहीं बल्कि पूरे मानव सभ्यता का अंत करने में योगदान देंगे इसमे समय ऐसे जैविकीय हथियार बनाए जा रहे हैं जो पूरी दुनिया के लिए खतरा बन रहे हैं। अर्थात मानव की सभ्यता खतरे में पड़ गई है, अभी तक हम खोजे गए सभ्यताओं का अध्ययन पुस्तकों में करते हैं कही ऐसा ना हो कि आज का आधुनिक समाज एक बीता हुआ कल खंडहर में तब्दील हो जाने के बाद सभ्यता का ही अंत हो जाए।

सभ्यता शब्द का प्रयोग मानव समाज के एक सकारात्मक, प्रगतिशील और समावेशी विकास को इंगित करने के लिए किया जाता है। सभ्य समाज अक्सर उन्नत कृषि, लंबी दूरी के व्यापार, व्यवसायिक विशेषज्ञता और नगरीकरण आदि की उन्नति स्थिति का घोतक है। इन मूल तत्वों के अलावा सभ्यता कुछ माध्यमिक तत्वों, जैसे विकसित यातायात, व्यवस्था, लेखन, मापन के मानक, संविदा एवं नुकसानी पर आधारित विधि–व्यवस्था, कला के महान शैलियों, स्मारकों के स्थापत्य, गणित, उन्नत धातुकर्म एवं खगोलविद्या आदि की स्थिति से भी परिभाषित होती हैं। सभ्यता शब्द ''सभ्य'' का विस्तार रूप है इसलिए सभ्यता को समझने से पहले हमें शब्द को समझना होगा व्यक्ति द्वारा मानवीय व्यवहारों के अनुरूप रहने के तरीके को सभ्य कहा जाता है यानी कि वह बौद्धिक क्षमता व व्यवहार जो मनुष्य को पशुओं से अलग बनाता है और मनुष्य को मनुष्य बनाता है को ''सभ्य'' कहा जाता है और इसी तरीके को समाज में लागू करने के लिए बनाए गए सामाजिक व्यवस्था ''सभ्यता'' कहलाती है। सरल शब्दों में कहें तो एक मानवीय समूह द्वारा समाज में रहने के लिए जिन तौर तरीकों को अपनाया जाता है उन तौर–तरीकों को संयुक्त रूप से सभ्यता कहा जाता है।

उदाहरण के तौर पर हम सिंधु घाटी सभ्यता या वैदिक सभ्यता को ले सकते हैं सिंधु घाटी सभ्यता अपने तरीके से समाज को बांटती थी और वैदिक सभ्यता अपने अलग तरीके से समाज को बांटती थी। यह दोनों सभ्यताएं अपने बनाए गए तौर–तरीकों के अनुसार ही जीवन यापन करती थी। वैदिक सभ्यता वेदों से संबंधित थी, जबकि सिंधु घाटी सभ्यता स्वयं के सामाजिक मूल्यों पर आधारित थी व उन्हीं को अपना मूल मानकर उन्हीं के अनुसार कार्य करती थी। यद्यपि दोनों सभ्यताएं मनुष्यों ने ही बनाई आई थी लेकिन फिर भी दोनों का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक व्यवहार अलग था। हालांकि सभी सभ्यताओं के निर्माण का उद्देश्य एक ही होता है और वह उद्देश्य है समाज को सुव्यवस्थित तरीके से चलाना। इन दोनों सभ्यताओं के बीच का अंतर समझ कर हम यह जान सकते हैं कि मनुष्य सभ्य रहने के लिए किसी भी तौर–तरीके का प्रयोग कर सकता है और जिन तौर तरीकों का प्रयोग करता है उन्हें संयुक्त रूप से सभ्यता कहा जाता है

सभ्यता का आशय उस समूची यंत्र पद्धति और उसके संगठन से है जिसकी मानव ने अपने जीवन की परिस्थितियों पर नियंत्रण प्राप्त करने की प्रयास से रचना की है। सभ्यता संस्कृति विकास की स्तर को प्रकट करती है। यह किसी मानवीय है समाज की विशिष्ट मानवीय उपलब्धि तथा गुणों का संकेत देती है। सभ्यता एवं संस्कृति का अंतर बताते हुए प्रसिद्ध साहित्यकार एवं चिंतक श्री अज्ञय ने लिखा है कि ''सभ्यता वह है जिसमें हम जीते हैं और संस्कृति वह है जो हम में जीती हैं।'' जो हम हैं वहीं संस्कृ ति है, जो कुछ भी हमारा है वही सभ्यता है।

19वीं एवं 20वीं सदी के विद्वानों ने इस बात की पुष्टि की है कि समाज एवं संस्कृति एक सर्पिल गति से घूमती रहती है। विको, परेटों,स्पेंगलर, सोरोकिन एवं अर्नाल्ड टायनबी ने प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति के अध्ययनों के आधार पर स्पष्ट किया है कि समाज में परिवर्तन का क्रम सदा चलता रहता है। उनके अनुसार हर सभ्यता का जन्म होता है, वह विकसित होती है अपनी चरम सीमा पर पहुंचती है और फिर वहां से पतनोन्मुख होती हुई अंततः समाप्त हो जाती है। परिवर्तन की चक्रीय सिद्धांत का मूल आधार यह है कि सामाजिक परिवर्तन जहां से आरंभ होता है अंत में वही पहुंचकर समाप्त होता है।

जर्मन दार्शनिक ओसवाल्ड स्पेंगलर ने अपनी पुस्तक जैम कमबसपदम वि जीम मेज मे यह बताया है कि किसी भी संस्कृति का विकास चक्रीय गति से होता है। उनका यह सिद्धांत दुनिया के आठ प्रमुख सभ्यताओं के अध्ययन पर आधारित हैं। उन्होंने रूसी संस्कृति का भी अध्ययन किया। उन्होंने आदिम जाति समाज का विश्लेषण करने का प्रयास नहीं किया क्योंकि उनका मानना था कि आदिम जातीय समाज इतिहासहीन है। संस्कृति की तुलना सावयव से करते हुए उन्होंने कहा है कि ''बनसजनतमे तम वतहंदपेउे दक वतसक पिजवतल पे जीमपत बवससमबजपअम इपवहतंचील'' स्पेंगलर का मानना है कि जैसे व्यक्तियों के जीवन में उत्थान एवं पतन होता है वैसे ही संस्कृति का भी उत्थान एवं पतन होता है, जैसे व्यक्ति का जीवन चक्र बचपन, युवा, परिपक्वता एवं बुढापा के चरणों से कर्मशः गुजरता है, संस्कृति की भी थी उसी ढंग से चार चरणों से गुजर कर समाप्त हो जाती है। संस्कृति के चक्रीय विकास के इस नियम को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने इसकी तुलना चार ऋतुओ से कि हैं– वसंत, पतझड़, सर्दी एवं ग्रीष्म।

स्पैंगलर ने बताया है कि किसी संस्कृति का जीवन लगभग 1000 साल का होता है। क्योंकि पाश्चात्य संस्कृति का उदय लगभग 900 ई. के आस–पास हुआ, इसलिए उनका मानना है कि पाश्चात्य संस्कृति अब पतन के कगार पर है। इन्होंने 8 सभ्यताओं का उद्विकास का विश्लेषण प्रस्तुत किया है जो उनके व्यक्तिगत विचारों से काफी प्रभावित है। उनका विचार निराशावादी चिंतन पर आधारित है।

अर्नाल्ड टायनबी ने भी स्पेंगलर की तरह परिवर्तन के चक्रीय सिद्धांत का समर्थन किया उन्होंने दुनिया की 21 प्रमुख सभ्यताओं का गहन अध्ययन किया, जिनका वर्णन उनकी पुस्तक जैम जनकल वि भ्पेजवतल (द स्टडी ऑफ हिस्ट्री) में मिलता है। उनका चक्रीय सिद्धांत चुनौती एवं प्रत्युत्तर सिद्धान्त पर आधारित है। किसी भी सभ्यता को चुनौती दो क्षेत्रों से मिलती हैं– एक भौगोलिक परिस्थिति एवं दूसरी सामाजिक परिस्थिति। प्रत्येक सभ्यता के आरंभ में लोगों को समाज की भौगोलिक परिस्थितियों के चलते बहुत प्रकार के प्राकृतिक आपदाओं को झेलना पड़ता है। इन चुनौतियों को झेलना कोई आसान काम नहीं होता है। समाज और संस्कृति के बीच जो एक चुनौतीपूर्ण स्थिति होती है उनका सामना करने के लिए मनुष्य को विभिन्न प्रकार की क्षमताओं की

International Journal of Advances in Engineering and Management (IJAEM)
Volume 2, Issue 10, pp: 296-298 www.ijaem.net ISSN: 2395-5252

आवश्यकता होती है। अस्तित्व की लड़ाई उसकी शक्ति का काफी छात्र होता है।

दूसरी चुनौती का स्वरूप भौगोलिक ना होकर सामाजिक होता है। इस चुनौती का स्रोत आंतरिक और बाह्य दोनों होता है। टायनबी का आंतरिक स्रोत से तात्पर्य स्वदेशी सर्वहारा वर्ग से है जो ज्यादा लंबे समय तक अपने ही समाज के सृजनशील अल्पसंख्यकों के इशारे पर काम नहीं करना चाहता है, फलस्वरुप दोनों के बीच तनाव एवं संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। बाह्य स्रोतों के अंतर्गत उन्होंने बाहरी आक्रमणकारी बर्बर जाति के लोगों को रखा है जिसे बाह्य सर्वहारा वर्ग भी कहा जाता है। दूसरे शब्दों में जब सभ्यता का विकास होता है तो उस सभ्यता का सृजनशील अल्पसंख्यकों एवं स्वदेशी सर्वहारा वर्ग के संघर्ष मात्र से ही खतरा नहीं होता है बल्कि पड़ोसी बर्बर जाति के लोगों से भी खतरा रहता है। जब इस प्रकार की कलह और तनाव की स्थिति किसी सभ्यता के सामने उत्पन्न हो जाती है तो वह पतन और बिखराव की ओर बढ़ने लगता है।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि प्रत्येक सभ्यता का भविष्य सृजनशील अल्पसंख्यकों पर निर्भर रहता है। सभ्यता के आरंभिक काल में वे कल्पनाशील, शक्तिशाली एवं चुनौतियों का बहादुरी के साथ मुकाबला करने वाले होते हैं। नेतृत्व की रचनात्मक क्षमता के कारण संबंधित समाज विकास के चरमोत्कर्ष बिंदु पर पहुंच जाता है। लेकिन जब वे चुनौतियों का ठीक से सामना नहीं कर पाते हैं तो सभ्यता का पतन निश्चित हो जाता है। दूसरे शब्दों में सभ्यता का पतन सृजनशील अल्पसंख्यकों का चुनौतियों से हार है।

आज मानव के सामने की ऐसी सभ्यता का संकट खड़ा हो गया है कि पूरा मानव का अस्तित्व ही संकट में दिखाई दे रहा है। इसका परिणाम क्या होगा यह तो वक्त ही बताएगा। कोविड–19 ने पूरे विश्व को एक ऐसे संकट की तरफ ढकेल दिया है। जहां पर व्यापार रोजगार आवागमन के साथ–साथ भौतिक समीपता भी समाप्त हो गई है। आज पूरी दुनिया अपनी सुरक्षा के साथ–साथ सोशल डिस्टेंसिंग और इंटरनेट के माध्यम से एक दूसरे से संपर्क बना रही हैं, परंतु यह संपर्क अब वह एहसास नहीं कराती जो पहले हुआ करती थी। अब सम्मान करने का तरीका हो या जीवन जीने का ढंग सब में परिवर्तन हो गया है। आज दुनिया की एक तिहाई आबादी बेरोजगारी भुखमरी बेकारी के कगार पर पहुंच गई है। दुनिया की अर्थव्यवस्था माइनस में जा रहा है, सब कुछ स्थिर मालूम पड़ता है और दिनो दिन कोविड–19 का प्रभाव बढ़ता चला जा रहा है। इसकी चपेट में आने वाले व्यक्ति की दुर्दशा निश्चित है उसके आने वाले कल के लिए शारीरिक, मानसिक स्तर बेहतर नहीं होगा वैज्ञानिकों ने स्पष्ट कर दिया है कि प्रभावित व्यक्ति अब पहले जैसे कार्य करने की क्षमता नहीं हो सकेगी जो ज्यादा इससे संक्रमित हैं। उनकी अकाल मृत्यु हो जा रही है विचारकों के मत से सभ्यता का पतन या संकट के रूप में कोविड–19 को देखा जा रहा है।

संदर्भ :–

- सिंह जे. पी., सामाजिक परिवर्तन स्वरूप एवं सिद्धांत
- गुप्ता प्रो. एस. एल. शर्मा डॉ. डी. डी., समाजशास्त्र
- पटनायक किशन, विकल्पहीन नहीं है दुनिया
- रावत पब्लिकेशन्स जयपुर, उच्चतर समाजशास्त्र विश्वकोश
- डेलीहंट न्यूज
- विकिपीडिया